पूर्व कर्नल डॉ दलपतसिंह बया 'श्रेयस'

तम्हा विणयमेसेज्जा...

विनय –

विनय की चर्चा छिड़ते ही हमारे मन-मस्तिष्क में एक ऐसे व्यक्ति की छवि उभरती है जो अत्यंत शिष्ट, विनम्र, मितभाषी व मृदुभाषी हो तथा अपने गुरुजनों के प्रति सर्वतोभावेन समर्पित हो। 'उत्तराध्ययनसूत्र', भगवान महावीर की अंतिम देशना, जिसे उन्होंने स्वेच्छा से अपने किसी भी शिष्य की पृष्छा के बिना ही व्याकृत किया था, का प्रथम अध्याय है 'विनय-श्रुत', जिसमें उन्होंनें विनय की महत्ता को प्रतिपादित किया है। इससे स्पष्ट प्रतिभासित होता है कि वे साधक के लिये 'विनय' को अन्य सभी गुणों की अपेक्षा उच्चतर स्थान पर रखते हैं। यद्यपि इस अध्याय में कहीं भी विनय को परिभाषित नहीं किया गया है फिर भी इसमें विनयी शिष्य के इतने लक्षणों का वर्णन किया गया है कि विनय की परिभाषा स्वत: उभरकर सामने आ जाती है।

विनय की महत्ता को सभी स्वीकार करते हैं। जब यह कहा जाता है कि 'विद्या ददाति विनयम्'। तो विद्या, ज्ञान और विनय का अंतरंग संबंध स्पष्ट होता ही है, यह भी स्पष्ट होता है कि जो विद्या व्यक्तित्व में विनय का विकास न करे, वह व्यर्थ ही है।

यूँ तो विनय का महत्त्व जीवन के सभी पड़ावों पर समान रूप से पड़ता ही है, विद्यार्थी जीवन में इसका विशेष महत्त्व है क्योंकि जब तक शिष्य अपने विनय-गुण से गुरु को प्रसन्न नहीं कर सके उसके द्वारा उससे संपूर्ण वांछित ज्ञान को प्राप्त कर पाना संदिग्ध ही रहता है। धर्म-साधना के क्षेत्र में भी सफलता और विफलता के बीच की सीमा-रेखा गुरु-शिष्य संबंधों में विनय से होकर ही गुजरती है। संभवतया इसी को लक्ष्य करके भगवान महावीर ने भी शिष्य-गुणों में विनय को सर्वोपरि स्थान दिया है।

विनयी शिष्य के लक्षण –

विनय एक आंतरिक गुण है जिसकी बाह्य अभिव्यक्ति ही व्यवहार में दिखाई देती है। विनय का आंतरिक गुण इतने सूक्ष्म भावनात्मक स्तर पर होता है कि इसे शब्दों की परिधि में बांधना कदाचित संभव न हो सके अत: उत्तराध्ययनसूत्र में भी इसका वर्णन अभिव्यक्त व्यावहारिक गुणों के माध्यम से ही किया गया है। यह तो स्पष्ट ही है कि अविनय विनय का विलोम-प्रतिलोम है अत: विनयी के गुणों का वर्णन करते हुए शास्त्रकार – आर्य सुधर्मा ने अविनयी के दुर्गुणों की भी यह कहकर सहायता ली है कि विनयी शिष्य में इन विनय के व्यावहारिक गुणों के सद्भाव के साथ-साथ इन दुर्गुणों का अभाव भी अपेक्षित है।

विनयी शिष्य के व्यक्तित्व में सरलता, अहंकारशून्यता, विनम्रता, निर्दोषिता व अनाग्रहिता गुणों के समावेश के साथ-साथ कठोरता, दंभ, उग्रता, वाचालता, विद्रोह व आक्रामकता आदि दुर्गुणों का अभाव भी होना चाहिये।

विनयी शिष्य के लक्षणों को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं कि जो शिष्य गुरु के सान्निध्य में रहकर, उनकी भाव-भंगिमाओं व संकेतों से उनके मनोगत भावों को समझकर उनकी आज्ञा का पालन करता है, वह विनीत कहलाता है। इसके विपरीत जो शिष्य गुरु के सान्निध्य में नहीं रहता है, उनकी परवाह नहीं करता है, उनकी आज्ञा का उल्लंघन करता है तथा आम तौर पर उनके विपरीत आचरण करता है वह अविनीत कहलाता है।

विनयी शिष्य के लिये कुछ आचरणीय गुणों का उल्लेख करते हुए आर्य सुधर्मा कहते हैं कि वह गुरु के पास प्रशांत भाव से रहे, वाचाल न बने, अर्थपूर्ण ज्ञान ग्रहण करे, निरर्थक बातों में समय नष्ट न करे, क्रोध न करे, क्षमा को धारण करे, आवेश में न आए तथा कभी भी गुरु के विपरीत आचरण न करे। विनयी शिष्य बिना पूछे कुछ न बोले तथा पूछे जाने पर भी असत्य न बोले एवं वह गुरु की प्रिय तथा अप्रिय दोनों ही शिक्षाओं को समान भाव से धारण करे। अध्ययनकाल में वह आवश्यक रुप से अध्ययन करे तत्पश्चात् एकांत में जाकर ध्यान (पढ़े हुवे ज्ञान पर मनन व चिंतन) करे। गुरु के प्रति विनय-विनम्रता का आग्रह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है कि वह उनके बराबर न बैठे, उनसे सटकर न बैठे, उनसे कभी भी अपने आसन पर बैठे हुवे बात न करे, गुरु को कुछ पूछना हो तो अपने स्थान से ही न पूछकर उनके समीप जाकर विनम्रतापूर्वक पूछे तथा गुरु के बुलाने पर वह अपने आसन या शय्या पर से बैठे हुवे या लेटे हुवे ही उत्तर न दे अपितु विनम्र भाव से उनके पास जाकर नतशिर होकर उनकी आज्ञा को ग्रहण करे व उसका तत्परता से पालन करे।

विनय से लाभ तथा अविनय से हानि –

शास्त्रकार आर्य सुधर्मा इस विषय पर अपने स्वानुभूत विचारों को स्पष्टता से अभिव्यक्त करते हुए कहते है कि विनयी व गुरु के मनोनुकूल चलने वाला शिष्य क्रोधी व दुराश्रय गुरु को भी प्रसन्न कर लेता है जबकि अविनीत, आज्ञा में न रहने वाला दुष्ट शिष्य मृदुस्वभाव वाले गुरु को भी क्रुद्ध कर देता है।

शिष्य के विनय-भाव से प्रसन्न होकर संबुद्ध पूज्य आचार्य उसे विपुल अर्थगंभीर श्रुत-ज्ञान प्रदान करते हैं जिससे उस शिष्य के सब संशय मिट जाते हैं तथा वह जन-जन में विश्रुत शास्त्रज्ञ के रूप में सम्मानित होता है, देव, गंधर्व व मनुष्यों से पूजित होता है तथा अंततः शाश्वत सिद्ध होता है अथवा अल्प कर्मवाला महान् ऋद्धि-संपन्न देव होता है।

अविनय के दुष्परिणाम की चर्चा करते हुवे वे कहते हैं कि अविनयी, दुराचारी शिष्य उस शूकर के समान मृगवत् अज्ञ है जो चावल की भूसी को छोड़कर विष्टा खाता है। गुरु के प्रतिकूल आचरण करने वाला दुःशील वाचाल शिष्य सब जगह से उसी प्रकार से अपमानित करके निकाल दिया जाता है जिस प्रकार एक सड़े कान वाली कुतिया सब जगह से दुत्कारकर निकाल दी जाती है। अतः दुःशील से होने वाली अशोभन स्थिति को समझकार उसे अपनेआप को विनय में स्थित करना चाहिये।

विनय दासता नहीं –

आचार्या श्रीचंदनाजी के अनुसार – यहां यह बात समझ लेनी आवश्यक है कि विनय से आर्य सुधर्मा का अभिप्राय दासता या दीनता नहीं है, गुरु की गुलामी नहीं है, स्वार्थसिद्धि के लिये कोई दुरंगी चाल नहीं है, कोई सामाजिक व्यवस्थामात्र नहीं है अथवा वह कोई आरोपित औपचारिकता भी नहीं है। विनय तो गुणी गुरुजनों के प्रति शिष्यों के सहज प्रमोदभाव की विनम्र अभिव्यक्ति है जो गुरु-शिष्य के बीच एक मानस-सेतु का कार्य करता है, जिसके माध्यम से गुरु शिष्य को अपने ज्ञान से लाभान्वित करते हैं।

विणय-मूलओ धम्मो –

जैन वांग्मय में विनय को विनम्रता से भिन्न अर्थ में आचार के अर्थ में भी प्रयुक्त किया गया है। 'विणए दुविहे पण्णत्ते – आगार विणए य अणगारविणए य' में यह इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। उस अर्थ में जैन-धर्म को विनयमूलक अर्थात् चारित्रधारित माना गया है। इसमें चारित्र को प्रधानता देते हुए सम्यक्चारित्र के अभाव में मुक्ति की प्राप्ति असंभव मानी गई है। तप युक्त सम्यक्चारित्र से ही 'संवर' और 'निर्जरा' द्वारा मोक्ष प्राप्ति संभव है, यह निर्विवाद है। सम्यक्चारित्र के अभाव में तो 'आस्रव', 'बंध' व तज्जनित भव-भ्रमण ही हो सकता है, मुक्ति नही।

तम्हा विणयमेसेज्जा –

'यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जब तक गुरु शिष्य के व्यवहार से प्रसन्न न हो तथा उसकी पात्रता के बारे में आश्वस्त न हो, गुरु की दृष्टि में यदि वह अप्रामाणिक, अनैतिक व दुराचारी है तो चाहते हुए भी वे शिष्य को अपना वह सब ज्ञान व आशीर्वाद नहीं दे सकेंगे जो वे दे सकते हैं। अतः शिष्य द्वारा अपने विनयसंपन्न आचरण से गुरु की प्रसन्नता अर्जित करना गुरु से ज्ञान-प्राप्ति की पहली शर्त है। गुरु के महत्व को स्वीकार करके शिष्य को गुरु के प्रति सर्वात्मना समर्पण करना चाहिये।'

आर्य सुधर्मा के शब्दों में इसलिये (शिष्य को) विनय का आचरण करना चाहिये जिससे कि शील की प्राप्ति हो। ऐसा विनयी मोक्षार्थी शिष्य विद्वान गुरु को पुत्रवत् प्रिय होता है तथा अपने गुणों के कारण वह कहीं से भी निकाला नहीं जाता है (अपितु सर्वत्र सम्मानित होता है)। यथा –

'तम्हा विणयमेसेज्जा, सीलं पडिलभे जओ।
बुद्ध-पुत्त नियागट्ठि, न निक्कसिज्जइ कण्हुई।।'

– उत्तराध्ययनसूत्र, १/७

E-26, भूपालपुरा,
उदयपुर-३१३००१ (राज.)

■

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org